RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-08
August-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i08.047

दार्शनिक और वैज्ञानिक चिंतन में मानव चेतना

Santosh Rani

M.A. Yoga (Net),Dept. of Phy.Education, Chaudhary Ranbir Singh University, Jind

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 17 August 2020

Keywords
चेतना, अनात्मावाद, क्षणिकवाद, जीवात्मा समष्टि-व्यष्टि, अन्तर्निक्षण, मन बुद्धि, जाग्रत, सुषुप्ति, अहंकार, चित बोध

ABSTRACT

वैदिक क्षेत्र और वैज्ञानिक क्षेत्र दोनों में चेतना को गहन अन्वेषण हुआ। चेतना का विषय भारतीय वेदों, दर्शनों, शास्त्रों और उपनिषेदों से जुड़ा विषय है। वैदिक साहित्य में चेतना का वर्णन किया गया, इसलिए चेतना को सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में समझा है ना कि पाश्चात्य विद्वानों के मन्तव्यों के आधार पर चेतना ब्राहमाण्ड में छिपी हुई वह अद्भुत शक्ति है, जिससे प्रत्येक वस्तु स्पंदित होती है छोटे से छोटे जीव या अणु से लेकर कण-कण में पेड़-पौधे मनुष्य, नदी, समंदर, मनुष्य, हर कुदरती वस्तु अन्तरिक्ष के अन्दर, जल के अन्दर रहने वाले जीवों में जो स्पंदन है वह चेतना ही है। चेतना को समझने के लिए भारतीय वेदों, दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करना विशेष आवश्यक है। न केवल पाश्चात्य विचार धारा से इसको समझा जा सकता। भारतीय साहित्य में बताया गया है अणु से लेकर विभु तक सब जगह चेतना ही है, मनुष्य जीवन में जो सुख और दुख की जो अनुभूति चेतना के कारण ही होती है। सामान्य रूप में चेतना का अभिप्राय चैतन्यता सजीवता आदि से है। चेतना के कारण सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में स्पंदन, परिवर्तन और गतिशीलता दिखाई पड़ती है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में चेतना है, चाहे वह वस्तु सजीव हो या निर्जीव परंतु भारतीय साहित्य में मनुष्य में चेतना के स्तर को उच्च बताया गया है।

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिकों ने मानव चेतना को सच्चिदानंद स्वरूप कहा है। परंतु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के विचारों में चेतना वह तत्व है, जिसमें ज्ञान की, भाव की और क्रियाशीलता की अनुभूति होती है, चेतना को दर्शन में स्वयं प्रकाश तत्व माना गया है। मेग डूगल महाशय के कथानुसार जिस प्रकार भौतिक विज्ञान की अपनी ही सोचने की विधियां और विशेष प्रदत है, उसी प्रकार चेतना के विषय में चिंतन करने की अपनी ही विधियां और प्रदत है। चेतना को भारतीय वेदों, शास्त्रों और दर्शनों में बताई गई आध्यात्मिकता के परिपेक्ष्य में जाना जाता है। वैदिक साहित्य में बताया गया है किसी अणु से लेकर विभु तक सब जगह चेतना का वास है। सभी जीवित और निर्जीव वस्तुओं में चेतना का वास बताया गया है। चेतना को समझने के लिए भारतीय वेदों और शास्त्रों और भारत की जीवंत संस्कृति को समझना बहुत आवश्यक है, केवल पाश्चत्य विचारधारा से मानव चेतना को नहीं समझा जा सकता है। चेतना के पयार्यवाची के रूप में बोध कराने की वृति या शक्ति है, जिससे जीवधारियों को अनुभूति होती है। प्रणियों में वह जीवंत शक्ति जिससे वे जीवित रहते हैं, वह भी चेतना ही है। भारतीय चिंतन में चेतना को अलग-अलग रूपों में अभिव्यक्त किया है।

चेतना का अर्थ परिभाषा

चेतना शब्द की उत्पत्ति चिंत संज्ञा धातु से हुई है। अंग्रेजी शब्द कोष में इसे Consciousness कहते हैं। इसके अर्थ भिन्न-भिन्न माने गए हैं- वेदन, अनुभव, अन्त: संज्ञा, बोध, अन्तर्बोध, ज्ञान, चित भोग, मनस्कार, अहंकार, चिदात्मक, प्रभा, अन्तश्चैतन्य, सुखानुभव, सुख-वेदन आदि।

1. डा. राम प्रसाद त्रिपाठी के अनुसार :- चेतना जीव-धारियों में रहने वाला वह तत्व है जो निर्जिव पदार्थो से भिन्न बनाता है।
2. डा. नागेन्द्र के अनुसार :- चेतना का अर्थ वह शक्ति है जो ज्ञान का आधार है और इसलिए यह स्वयं अपरिभाष्य है। अन्तर्निरीक्षण द्वारा ही चेतना का ज्ञान संभव है। बाहय निरीक्षण द्वारा नहीं।
3. विदुषी ऐनीबेसेंट ने चेतना का जीवन का पर्याय बताया है। उन्होंने बताया कि जीवन के बिना चेतना संभव नहीं है और चेतना के बिना जीवन संभव नहीं है। चेतना शब्द का प्रयोग दर्शन और मनोविज्ञान में मिलता है, चेतना का सम्बन्ध मानव की आन्तरिक शक्ति चित से माना जाता है। वस्तुत: चेतना चित

RRIJM 2015, All Rights Reserved

का सकारात्मक गुण बताया जाता है। हिंदी विश्व कोश में चेतना शब्द का अर्थ इस प्रकार लिया गया है :- बुद्धि, मन की एक वृति, चैतन्य चेतना, चितवृति, स्मृति, याद, सुधि, सावधान होना होश में आना, विचारना, सोचना, ध्यान दे आदि से लिया जाता है। विभिन्न शब्दों कोशों का देखन के बाद चेतना के उपर्युक्त अर्थ ध्यान में रखते हुए चेतना का अर्थ इस प्रकार लिया जाता है चेतना बुद्धि अथवा मन की वह विशेष वृति है, जिसके कारण मनुष्य को अनुभूतियों, भावों, विचारों बाह्य ध्वनियों आदि का अनुभव होता है।

चेतना का स्वरूप :- प्राचीन वैदिक साहित्य में चेतना की सत्यता को निर्विवाद रूप से स्वीकारा गया है। वेदांत ने चेतना और आत्मा के बीच में होने वाले सुक्ष्म भेद का समाप्त करके सारी सृष्टि का आधार एक सच्चिदानंद ब्रहम को ही माना है। वैदिक ऋषियों ने ध्यान के माध्यम से अखण्ड सत्म या परम सत्ता का जो साक्षात्कार किया वहीं वैदिक चिंतन की भूमिका में ग्रंथ तैयार करता गया है, इसलिए वेदों को अपौरूषय कहा गया है। वेदों में मानव चेतना को समष्टि या परमात्म का स्वरूप कहा गया है। वैदिक कालिन ऋषियों ने मानव चेतना को अनेक नामों से पुकारा है। गौपा, सुपर्णा, अजोभाग, अमर्त्य आदि । वैदिक कालिन ऋषियों ने चेतना को समष्टि चेतना का ही अंश बताया है। उन्होंने बताया कि इस संसार को परमात्मा का कामनामय रूप माना जाता है। अमर्त्य मर्त्य का सयोनी है। यह मंत्र इस बात की पुष्टि करता है। उपनिषेदों में चेतना को जीवात्मा की संज्ञा दी गई है। यहां जीवात्मा ओर आत्मा दोनों का अलग-अलग वर्णन मिलता है। यहां आत्मा को परब्रहम की संज्ञा दी गई है और आत्मा को बंधन मुक्त ईश्वर का स्वरूप बताया गया है। परंतु जीवात्मा का यथार्थ सता की अशं बताया गया है। इसे शरीर, इंदियों, मन इत्यादि में स्वींच्च स्तर का बताया गया है। उपनिषेदों में बताया है कि परब्रहमा जीव परम तत्व को साथ लेकर जब जीव की सृष्टि करते हैं, उसे जीवात्मा कहा गया है, जीवात्मा शरीर में रहते हुए। सभी विषयों का भोकता कहा जाता है, परंतु फिर भी वह स्वींच्च स्तर का कहा जाता है। यही जीवात्मा चेतना का कारण माना जाता है। जीवात्मा व्यक्तिक आत्मा को कहा जाता है। उपनिषेदों में मानव चेतना की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

1. जाग्रतावस्था :- यह इंद्रियों द्वारा बाहरी विषयों का भोग करता है। उस समय जाग्रत अवस्था में जीवात्मा विश्व कहलाता है।
2. स्वप्नावस्था :- स्वप्नावसथा में जीवात्मा तैजस कहलाता है।
3. सुषुप्ति अवस्था :- सुषुप्ति अवस्था में आत्मा प्राज्ञ कहलाता है।
4. तुरीया वस्था :- तुरीया वस्था में जीवात्मा को आत्मा कहा जाता है। इसे शुद्व चैतन्य कहा जाता है। वेदों में कहा गया है कि जीवात्मा मनुष्य के मानस स्तर पर रहती है। वेदों में मन को बंधन और मोक्ष का कारण बताया गया है। मन के कारण ही अज्ञान वश व्यष्टि चेतना स्वयं को समष्टि चेतना अर्थात परमात्मा से अलग मान बैठती है। शुद्व मन से ही उसका साक्षात्कार संभव है। कठोपनिषद में कहा गया है कि यह ज्ञान स्वरूप आत्मा न तो जन्म लेता है और न ही मरता है। वेदों की धाराणा के अनुसार सृष्टि का संचालक, संवर्द्धक और संहारक ऋत ही है। सृष्टि की या ब्राहमाण्ड की संतुलित गति उसी पर निर्भर करती है। समस्त ब्रहमांड में यही ऋत या चेतन शक्ति अनुप्रविष्ट है। आरण्यक ऋग्वेद के मंत्रों की पुष्टि में ही प्राण विद्या का वर्णन करते हैं। ऐतरेय आरण्यक में प्राण को ही स्रष्टा और पिता कहा है। प्राणों के द्वारा ही अन्तरिक्ष और वायु की सृष्टि हुई है। प्राण को पिता माना गया है और अंतरिक्षक और वायु को उसकी सन्तान माना गया है। मंत्र दृष्टा ऋषियों के रूप में यह चेतना ही विद्मान थी। प्राण (चेतना) सबसे बड़े प्राणी से लेकर चीती तक सभी जीवों में विद्मान है। इस चेतना के अभाव में यह सृष्टि हीन होती।

सोडयमाकाश: प्राणेन बृहत्या, विष्टब्द्य: तद्यथामाकाश: प्राणेन बृहत्या विष्ट बद्य: एवं स्र्वाणि भूतानि, आपिपीलिकाभ्य: प्राणेन बृहत्या विष्टब्द्यानीत्येवं विद्यात् (ऐतरेय आरण्यक 2/1/6)

प्रश्नोपननिषेद में कहा गया तू ही गर्भ में विचरने वाला और तू ही माता-पिता के अनुरूप संतान के रूप में जन्म

लेने वाला है, तू ही सबके शरीरों में प्राण रूप से स्थित रहता है

कठोपनिषेद में स्पष्ट कहा गया है कि चारों वेद लिस पद को बारम्बार नमस्कार करते हैं। वह ओम् है। इसमें श्रुतियों की एकार्थका का वर्णन किया गया है।

सर्व वेदा यत्पद मामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।

श्रीमद् भागवद गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं

कर्मण्येवग्रधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगो अस्त्वकार्मणि

इसमें भगवान श्री कृष्ण धर्म और चेतना के विषय में बताते हुए कहते हैं- हे अर्जुन तेरा कर्म करने में अधिकार है फल पर नहीं है इसलिए तू कर्म कर, फल की चिंता न कर, इस प्रकार श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य आसक्ति रहित होकर कर्म करता है अर्थात जिसके कर्म शुद्ध होते हैं वह मुझे तत्व से जान लेता है। मेरे चैतन्य रूप को जान लेता है। वह यह शरीर त्यागकर दोबारा इस धरा पर जन्म नहीं लेता। मुझे ही प्राप्त हो जाता है

जन्म कर्म च में दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वत:।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोअर्जुन

पुन: भगवान श्री कृष्ण धार्मिक क्रियाओं के विषय में बताते हैं कि यज्ञ के अंदर जो सामग्री डाली जाती है, पितरों को जल अर्पण किया जाता है, अनाज औषधि, मंत्र, घृत अग्नि आहुति सब मैं ही हूं, धर्म ही परलोक में प्राणि मात्र के साथ जाने वाला बंधु (मित्र) है। धर्म ही नित्य रहने वाला चेतन तत्व कहा गया है अर्थात् धर्म की उपासना करना ही मानव कल्याणकारी कर्तव्य होना चाहिए।

बौद्ध और जैन दर्शन:- बौद्ध दर्शन में शरीर व मन से अलग किसी चेतना के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा गया है। जिस प्रकार वेदों और उपनिषेदों से शरीर व मन से अलग जीवात्मा व परमात्मा की सत्ता को स्वीकार किया है बौद्ध दर्शन में कहा गया है कि शरीर व मन से अलग कोई चैतन्य शक्ति नहीं है। उन्होंने इसका सर्वथा निषेद किया है। उन्होंने चेतना की तुलना एक दीपशिखा से की है। जिस प्रकार दीप शिखा अनवरत रूप से प्रज्वलित हो रही है, इस क्षण में जो शिखा है अगले क्षण में वह शिखा नहीं रहती है। उसी प्रकार नहीं के जल से तुलना करके बताया कि जिस प्रकार नदी का जल लगातार प्रवाहित होता रहता है। नदी की अविच्छिन्न धारा प्रवाह मान रहती है। इस क्षण जो जल है, वह अलगे क्षण नहीं रहता। इसी तरह मनुष्य में चेतना सतत प्रवाहमान होती रहती है। महात्मा बुद्ध ने चेतना को ही चित या मन की संज्ञा दी है। इसी चित को हम दर्शनों की भाषा में आत्मा कहते हैं। इस चित को स्वभाव से निर्मल और शुद्ध माना गया है। चित के बद्ध हो जाने पर बंधन और मुक्त होने पर है मोक्षा का लाभ होता है। बौद्ध धर्म में योग की भांति धर्मसाधना द्वारा महा सुखमय चेतनत्व के विषय बताया गया है। इस महासुख की प्राप्ति का रास्ता बौद्धों ने बताया है। इस महासुख की उत्तति का स्थान इड़ा और पिगंला नाम की दो प्रसिद्ध नाड़ियों के संयोग में बताया है। बांयी नासिका में जो नाड़ी स्थित है उसे ललला नामक (चंद्रनाड़ी) और दाहिनी नासिका की रसना नाड़ी (सूर्य नाड़ी) बताया है। ये दो नाड़ियां उस महासुख कमल के दो खंड स्वरूप हैं। इस महासुख मकरंद का पान योगी साधक अपनी साधना के द्वारा प्राप्त करता है। बौद्ध धर्म में योग की भांति महासुख चेतन तत्व (आनंद प्राप्ति) के बारे में बताया गया है। उन्होंने चित के द्वारा आत्म तत्व में लीन होने के बारे बताया है। चित का स्वभाव ही चंचल होता है परंतु जब चित रागादि से मुक्त हो जाता है या स्थिर हो जाता है। मूल तत्व को शून्य मानते हुए अपने मन को भी शून्य में चेतना का विलय कर देना आवश्यक है, जिससे सहजावस्था की प्राप्ति सहज और सरलता पूर्वक हो सके। यहां बाह्य एवं अन्त: दोनों सताओं को शून्य विलयन हुआ है जो कि अनिर्वचनीय है। ये केवल ज्ञान को ही अपने में स्थित मानते हैं और दो प्रकार के सत्य को स्वीकार करते हैं।

1. सावृत्तिक सत्य :- अविद्या जानित व्यवहारिक सत्ता
2. पारमार्थिक सत्य :- प्रज्ञा जनति सत्य

बौद्धों के अनुसार कोई भी पदार्थ क्षण से ज्यादा स्थाई नहीं रह सकता, इसी प्रकार कोई भी प्राणी दो क्षणों में एक जैसा नहीं रह सकता, इसलिए वे आत्मा को भी क्षणिक मानते हैं और उनका यह सिद्धांत क्षाणिक वाद कहलाता है। बौद्ध दर्शन तीन मुख्य सिद्धांतों पर कार्य करता है।

1. अनीश्वरवाद 2. अनात्मवाद 3. क्षणिकवाद

1. अनीश्वरवाद:- इस सिद्धांत के अनुसार वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि दुनिया कार्य-कारण के सिद्धांत पर चलती है।

2. अनात्मवाद:- अनात्मवाद का मतलब यह नहीं कि वे सच में आत्मा को नहीं मानते, वे कहते हैं कि जिसे लोग आत्मा मानते हैं वो चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह है।

3. क्षणिकवाद:-इस सिद्धांत के अनुसार: इस ब्राह्मण्ड में जो कुछ भी है, वह बस कुछ क्षणिक और नश्वर है कुछ भी स्थाई नहीं है ऐसा वे मानते हैं। जैन दर्शन एक प्राचीन भारतीय दर्शन है। इसमें अहिंसा को सर्वोच्च स्थान दिया गया। जैन धर्म की मान्यता के अनुसार 24 तीर्थंकर समय-समय पर संसार चक्र में फंसे जीवों के कल्याण के लिए उपदेश देन इस धरती पर आते हैं। भगवान महावीर जैन दर्शन में 24वें तीर्थंकर माने जाते हैं। जैन दर्शन में कर्म का जीव के साथ

घनिष्ट संबंध बताया गया है। जैन दर्शन में चेतन तत्व को द्रव्य की संज्ञा दी गई है, में द्रव्य को ही सत् मानते। वे बताते हैं कि चेतना द्रव्यों का आगंतुक गुण है। इसमें कहा गया है बिना द्रव्य के अस्तित्व संभव नहीं हैं। यह जगत द्रव्यों से बना हुआ है, द्रव्य के दो रूप बताए गए हैं- अस्तिकाय और अनस्तिकाय। अनिस्काय के अमूर्त होने से इसमें केवल काल की ही गणना होती है जबकि अस्तिकाय में दो प्रकार के द्रव्यों का वर्णन है। (1) जीव (2) अजीव

चेतन द्रव्य को जीव अथवा आत्मा कहा जाता है। सांसारिक दशा में यही आत्मा जीव कहलाती है। जीव में प्राण, शारीरिक, मानसिक और ऐन्द्रिय शक्ति होती है। जिसमें कार्य के प्रभाव से औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक और पारिमाणिक ये पांच भाव प्राण से संयुक्त रहते हैं। द्रव्य के रूप बदलने पर यही भाव दशान्न प्राण पुद्गल कहलाते हैं। इस प्रकार पुद्गल युक्त जीव ही संसारी कहा जाता है। जैन दर्शन के अनुसार जीव नित्य और स्वयं प्रकाशक कहा जाता है। यह अविद्या के कारण बंधन में बंध जाता है।

जैन दर्शन में कर्म पौद्लिक अर्थात धूल के कण के समान होते हैं। ये जड़ पदार्थ होते हैं। ये मन, शरीर और वाणी द्वारा किए गए कर्म से उत्पन्न होते हैं। वासनाओं से उत्पन्न होते हैं। इसमें चार प्रकार के कर्मों का वर्णन है। चार घातीय कर्म और चार अघातीय कर्म।

घातीय कर्म:- ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, अन्वराय मोहनीय

अघातीय कर्म:- आयुष कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म, वेदनीय कर्म।

जीव के बंधन का मुख्य कारण पुद्गलों का बताया गया है। इनसे जीव का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो जाता है और जीव का पुद्गलों से मुक्त हो जाना ही मोक्ष कहा जाता है। यह मोक्ष दो प्रकार का बताया गया है।

- भाव मोक्ष
- द्रव्य मोक्ष

भाव मोक्ष ही जीव मुक्ति है। यह वास्तविक मोक्ष से पहले की अवस्था है। इसमें चार घातीय कर्मों का नाश हो जाता है।

द्रव्य मोक्ष:- चार प्रकार के अघातीय कर्मों को नाश होने पर द्रव्य मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार जैनों ने जीव को परिभाषित किया है- जिसका लक्षण चेतना है, वही जीव है। चेतना को जीव का स्वाभाविक गुण बताया गया है। जैन दर्शन में मानवीय चेतना को नित्य शाश्वत बताया है। जैन ग्रंथ 'पंचास्ति कायसमयसार 'में मानवीय चेतना को आत्मा के नाम से संबोधित किया है। आत्मा को इंद्रियों और शरीर से अलग चेतन स्वरूप सत्ता बताया है जैनों के मतानुसार चेतना अनन्त है। चेतना को संख्या में भी अनन्त बताया गया है। मुख्य रूप से जीव चेतना के दो प्रकार हैं:-

1. मुक्त चेतना
2. बद्ध चेतना

मुक्त चेतन को चेतना की विकसित अवस्था कहा गया है। इसमें मोक्ष प्राप्त आत्मायें आती है। बद्ध चेतना को मानवीय चेतना भी कहा जाता है यह सांसारिक बंधनों से ग्रस्त जीव की चेतना होती है। यह मल युक्त होती है। ये कर्म पुद्गलों से युक्त होते हैं। ये कार्य-कारण श्रृंखला में बंधे होते हैं। जैन दर्शन में इस संसार को किसी परमात्मा द्वारा बनाया गया स्वीकार नहीं किया गया, अपितु शाश्वत माना गया है। जन्म-मरण आदि जो भी होता है। उसे नियंत्रित करने वाली किसी सार्वभौमिक सत्ता को स्वीकार नहीं किया है।

न्याय दर्शन में मानव चेतना:-

न्याय दर्शन में चेतना का संबंध आत्मा से बताया गया है। न्यायिकों का मानना है कि मानव में चेतना देह, इंद्रिय, मन या बुद्धि का गुण नहीं है, अपितु आत्मा का गुण है। इस मान्यता की उन्होंने विभिन्न तर्कों द्वारा दी है। भौतिकवाद में चेतना को शरीर का गुण माना जाता है। न्याय दर्शन में बताया है कि मनुष्य की जाग्रता अवस्था में आत्मा का संपर्क मन के साथ, मन का संपर्क इंद्रियों के साथ और इंद्रियों का संपर्क बाहरी जगत के साथ रहने से आत्मा से उत्पन्न गुण चेतनता है। इन्होंने बताया है कि चेतनता आत्मा से अलग नहीं हो सकती । चेतना को शरीर का गुण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि जिस वस्तु की अपनी कोई चेतना न हो न्याय ने आत्मा को विभु माना है। यह काल और दिक् के द्वारा सीमित नहीं होती है। यद्यपि यह विभु है। फिर भी इसका अनुभव केवल शरीर के अंदर ही होता है। न्याय ने आत्माओं की संख्या को अनेक माना है। प्रत्येक आत्मा के साथ एक मनस् को संबंध रहता है। यह संबंध आत्मा के साथ बंधन की अवस्था में रहता है। मोक्ष की प्राप्ति होने पर मन और आत्मा दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। न्याय दर्शन ने जीवात्मा को अनेक मानकर यहां जैन और सांख्य के अनेकात्मवाद के सिद्धांत को माना है। न्याय ने आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण दिए हैं:- इच्छा और द्वेष से आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। किसी वस्तु की इच्छा होना, भूतकाल में उस वस्तु से प्राप्त होने वाले सुख का स्मरण होना है। यह स्मरण आत्मा के द्वारा होता है। किसी वस्तु से भूतकाल में जो दुख प्राप्त हुआ था। उसे देखकर द्वेष होना आत्मा के द्वारा स्मरण पर ही निर्भर है। सुख या दुख: भी आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। भूतकाल में आत्मा

को किसी वस्तु को देखने से जो सुख या दुख प्राप्त हुआ था, यह स्मरण हो जाता है। ज्ञान से भी आत्मा की सता प्रमाणित होती है, किसी वस्तु के बारे में जो ज्ञान होता है वह आत्मा के द्वारा ही होता है। चैतन्य आत्मा का आगंतुक गुण है। यह शरीर का आगंतुक गुण नहीं है यदि यह शरीर का आगंतुक गुण होता है तो मृत्यु के बाद भी शरीर के साथ रहता परंतु जीवन काल में भी चैतन्य का नाश हो जाता है। मृत्यु और मूर्च्छा के समय शरीर चैतन्य रहित हो जाता है। चैतन्य को ज्ञानेंद्रियों का गुण भी नहीं कहा जा सकता आत्मा ज्ञानेंद्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करती हैं जब आत्मा का संबंध ज्ञानेद्रिंयों से होता है। आत्मा के अभाव में ज्ञानेद्रिंयों से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। शरीर के माध्यम से मानव चेतना कर्मों के अनुसार सुख या दुख भोगती है। जब मनुष्य के सभी कर्म-संस्कारों का क्षय हो जाता है तो जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। चेतना जीवात्मा का आगंतुक गुण बताया गया है। जब यह समाप्त हो जाता है तो मनुष्य चेतना शून्य हो जाता है। न्याय दार्शनिकों की मान्यता के अनुसार मानव चेतना, चेतना के विकास की अंतिम स्थिति है। मानवीय जीवन का परम ध्येय जीवात्मा का विकास होता है। पूर्ण विकसित स्थिति प्राप्त करने पर यह चेतना शून्य हो जाता है। मानव चेतना निरवयक है और अवयवों से निर्मित पदार्थ नाशवान है, निरवयक पदार्थ नित्य हैं।

वैशेषिक दर्शन में मानव चेतना:- वैशेषिक दर्शन में आत्मा उस सता को कहा जाता है जो चैतन्य का आधार है। वैशेषिक दर्शन में आत्माओं को दो प्रकार का बताया है।

1. जीवात्मा
2. परमात्मा

जीवात्मा की चेतना को सीमित कहा गया है और परमात्मा की चेतना को असीमित कहा गया। वैशेषिक भी न्याय प्रकल्पना के अनुरूप चेतना की व्याख्या भी करता है। उन्होंने भी चेतना का आत्मा का ही गुण माना है। वैशेषिक ने आत्मा को अमर माना वह अनादि और अनन्त है। आत्मा की प्रमाणिता के लिए वैशेषिक के तर्क :-

1. प्रत्येक गुण का कोई न कोई आधार माना जाता है। वैशेषिक ने बताया है कि चैतन्य एक गुण है इस गुण का आश्रय शरीर, इंद्रियां और मन नहीं हो सकती इस गुण का आधार आत्मा है।
2. जिस प्रकार कुल्याणी चलाने के लिए व्यक्ति की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार ज्ञानेद्रिंयों को चलाने वाला भी कोई होना चाहिए वह है आत्मा।
3. प्रत्येक व्यक्ति को सुख: दुख: का अनुभव होता है। अत: ये सुख: दुख: आत्मा के ही गुण हैं।
4. जन्म लेते ही नवजात शिशु हंसता और रोता है। इससे सिद्ध होता है कि वह पहले भी अस्तित्व में था। वैशेषिक दर्शन में बताया है कि प्रत्येक आत्मा नित्य और विभु होती है। जीवात्मा अनादि, अनन्त व नित्य है। इस प्रकार वैशेषिक दर्शन में भी मानव चेतना को जीवात्मा का आगंतुक गुण बताया है।

सांख्य में मानव चेतना :- जिस सत्ता को अन्य भारतीय दर्शनों में आत्मा कहा गया है सांख्य ने उसे पुरूष की संज्ञा दी है। सांख्य दो तत्वों को मानता है। पुरूष और प्राकृति, सांख्य ने पुरूष को चेतन तत्व माना है और प्रकृति को जड़ तत्व की संज्ञा दी है। सांख्य ने पुरूष त्रिगुणातीत बताया और प्राकृति को त्रिगुणामयी कहा, सत, रज और तम प्रकृति के तीन गुण बताए हैं, वे बताते हैं कि प्रकृति और पुरूष के संयोग से सृष्टि का प्रारंभ होता है। प्रलय काल में प्रकृति शांत अवस्था में रहती है परंतु सृष्टि काल में जब पुरूष का प्रकाश प्रकृति पर पड़ता है तो उसकी साम्य अवस्था भंग हो जाती है। सृष्टि का प्रारंभ होता है, इसके तीनों गुण की साम्य अवस्था भंग होने पर महत् (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। महत् से अहंकार महाभूत की उत्तपति होती है। सत्व अहंकार से पंच ज्ञानेद्रिंय, पंच क्रमेद्रिंय और एक मन की उत्पत्ति होती है। राजसिक अहंकार से पंच तन्माओं और पंच तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पति मानी जाती है। सांख्य ने पुरूष को शुद्ध चैतन्य माना है। चैतन्य आत्मा में सर्वदा निवास करता है। इसमें चैतन्य को आत्मा का गुण नहीं स्वभाव माना गया है। यहां पुरूष को मानव चेतना की शुद्ध अवस्था बताया गया है। इसके कोई प्रकृति जन्य विकार नहीं होता है। विकारों से युक्त होने पर यह चेतना अशुद्ध हो जाती है और मानव चेतना का अशुद्ध अवस्था को जीव या जीवात्मा कहा जाता है। विशुद्ध चेतना बुद्धि से परे रहती है। मानवीय शुद्ध चैतन्य एक है और नित्य है। जबकि अशुद्ध चैतन्य प्राकृतिक जगत का अशं है।

योग दर्शन में मानव चेतना :- योग दर्शन में चेतना को (आत्मतत्व) पुरूष की संज्ञा दी है। चेतन मात्र ही जिसका स्वरूप है। यह आत्म तत्व सर्वथा शुद्ध और निर्विकार बताया गया। बुद्धि के संबंध से बुद्धि वृति के अनुरूप देखने वाला होने के कारण इसे दृष्टा की संज्ञा दी है। सांख्य प्रतिपादित मन, बुद्धि, अंहकार को योग में चित कहा गया है। इस चित में मनुष्य के संस्कार निहित रहते हैं। मानव चेतना में अन्तर्निहित चित रूपी दर्पण में जब शुद्ध चैतन्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता तो तदाकार सा हो जाता है। चित अपने वास्तविक स्वरूप में अचेतन होता है। परंतु चैतन्य स्वरूप आत्मा का प्रकाश प्रतिबिम्बित होने पर यह सचेत होने लगता

है। मानव चेतन में चित के माध्यम से ही ज्ञान प्राप्त करती है। इसमें ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया। जीव के बंधन का कारण क्या है। चित की वृतियां कौन सी हैं। इनके नियंत्रण के उपाय क्या हैं। यौगिक क्रियाओं के अंदर अष्ट्रांग योग का विस्तृत वर्णन है। इस सिद्धांत के अनुसार परमात्मा का ध्यान आन्तरिक होता है। जब तक हमारी इंद्रियों का रूख बहिर्गामी होता है तब तक ध्यान संभव नहीं है। इसके अनुसार परमात्मा के मुख्य नाम ॐ का जाप न करके अन्य नामों से परमात्मा की स्तुति और उपासना अपूर्ण ही है। इसमें परमात्मा की प्राप्ति या केवल्य के लिए चित वृतियों का निरोध बताया है जो अष्ट्रांग योग के माध्यम से संभव है।

मीमांसा दर्शन :- मीमांसा दर्शन में केंद्रीय तत्व को आत्मा कहा गया है। मीमांसाक आत्मा को अमर मानते हैं। उसका उत्पत्ति या विनाश नहीं होता। आत्मा को विज्ञानों का ज्ञाता माना गया जबकि विज्ञान स्वयं को समझने में अस्मर्थ है। आत्मा स्वयं प्रकाशमान है। उसे 'आत्म-ज्योति' की संज्ञा दी गई है। आत्मा को मीमांसा दर्शन में एक द्रव्य माना गया है जो चैतन्य गुण का आधार माना गया है। चेतना आत्मा का स्वभाव नहीं अपितु गुण माना गया है। आत्मा को स्वभावत: अचेतन कहा गया है। आत्मा का संपर्क जब मन, इंद्रियों से होता है तो तब आत्मा में चेतना का उद्य होता है। सुषुप्ति अवस्था में चेतना का अभाव रहता है। सुषुप्ति में आत्मा ज्ञान से शून्य हो जाती है और मोक्ष की अवस्था में आत्मा सभी गुणों से रहित हो जाती है।

वेदांत में मानव चेतना :- वेदांत में आत्मा को जीव या जीवात्मा नाम की संज्ञा दी गई । परम चेतना को सुषुप्ति आत्मा कहा गया है। शंकर आत्मा को ब्रहम ही कहता है। उन्होंने बताया कि आत्मा और ब्रहम दोनों एक ही वस्तु के दो नाम हैं। उन्होंने बताया कि आत्मा स्वयं सिद्ध है। इसके लिए प्रमाण की आवश्यता नहीं है। जो स्वयं सिद्ध न हो उसे प्रमाण की आवश्यकता होती है। चैतन्य को आत्मा का स्वरूप बताया है। आत्मा का मुख्य तत्व चैतन्य है। हम चेतना की अनुभूति तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्त और सुषुप्ति अवस्था में करते हैं। जाग्रत अवस्था में ब्राहय जगत की चेतना रहती है। स्वप्न में आभ्यंतर विषयों की स्वप्न के रूप में चेतना रहती है। सुषुप्ति में किसी न किसी रूप में चेतना रहती है जैसे मैं खूब आराम से सोया। तीनों अवस्थाओं में चैतन्य सामान्य है। चैतन्य को स्थायी तत्व माना गया है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में मानव चेतना :- विज्ञान चेतना के संबंध में अभी तक आगे नहीं बढ़ पाया है। चेतना ही सभी पदार्थों को जड़ चेतन, शरीर, मन, निर्जिव व जीवित, मस्तिष्क, स्नायु को बनाती है। फिर चेतना को इनके द्वारा समझाना व्यर्थ है। अतएव चेतना के विषय में भौतिक विज्ञान की विधियों से नहीं सोचा जा सकता विज्ञान स्वयं अपनी अंतिम ईकाइयों के स्वरूप के विषय में निश्चित मत प्रकाशित नहीं कर पाया जो उस विज्ञान का आधार है। चेतना के विषयों में अंतित निर्णय लेना युक्ति संगत नहीं है। चेतना का अचेतन तत्व के द्वारा समझना, उसमें कार्य कारण संबंध जोड़ना अविवेक पूर्ण है। चेतना के संबंध में वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। कुछ के अनुसार मनुष्य के बृहत मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं कुछ नाड़ियों के स्पंदन के परिणाम को ही चेतना मानते हैं। कुछ का मत है कि चेतना स्वयं तत्व है। इसका शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव नहीं पड़ता और शरीर की क्रियाओं का इस पर प्रभाव नहीं पड़ता है। एक मत के अनुसार शरीर चेतना के कार्य करने का यंत्र मात्र है, जिसे कभी उपयोग में लाया जा सकता है कभी नहीं यदि तंत्र बिगड़ जाए तो चेतना अपने कामों के लिए अपंग हो जाती है। चेतना के क्वाण्टम सिद्धांत के अनुसार क्वांटम कण और तरंग सिद्धांत में ब्राहमण्ड को अर्ज तरगों का संघनित रूप माना गया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक फ्रायड के अनुसार मानवीय चेतना के खंड हैं।

(1) अचेतन (2) चेतन

मन का मात्र 10 प्रतिशत भाग ही चेतन है और अधिकांश भाग अचेतन है। अमेरिकी मनीषी पुटनम ने मानव चेतना मस्तिष्क रूपी यंत्र के प्रकार्य से अधिक कुछ भी नहीं है। अत: आधुनिक वैज्ञानिकों की पहुंच मानव चेतना तक नहीं हो पाई है।

निष्कर्ष :- अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि चेतना समस्त सृष्टि का आधार है। चेतना मनुष्य की आत्मिक तथा सतात्मक एकता का धर्म है। चेतना को साहित्य का मूल तत्व कहा गया है। चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना को बताया गया है। वस्तुओं, विषयों और व्यवहारों का अध्ययन चेतना के द्वारा ही होता है। चेतना का संबंध मान की आतंरितक शक्ति चित से है। चेतना चित का सकारात्मक गुण है। चेतना का इतिहास विवादों से भरा पड़ा है। अनेक आचार्यो तथा विद्वानों के मतों की प्रस्तुत विद्वानों की प्रस्तुति के मतों के पश्चात् चेतना के स्वरूप संबंधी प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। चेतना की व्याप्ति विशाल है। वास्तव में मनुष्य सापेक्ष सच्चाई को वरन करने वाली चेतना की व्याप्ति निर्धारित नहीं की जा सकती है क्योंकि चेतना परिवर्तनशील है। चेतना शब्द का प्रयोग दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में किया जाता है। मनोवैज्ञानिक अर्थों में चेतना सभी प्रकार के मानसिक अनुभवों का संग्रहालय है, परंतु भारतीय वैदिक चिंतन भिन्न ऋषियों-महर्षि ने चेतना परम

सता का अंश माना है। जैसे वेदों में चेतना को समष्टि और व्यष्टि चेतना का नाम दिया है। वेदों में इसे जीवात्मा और आत्म नाम से संबंधित माना है। भिन्न-भिन्न दर्शनों में दार्शनिकों ने परम चेतना को अलग-अलग नामें से संबोधित किया है परंतु वास्तव में यह चेतना एक ही है। वह माना गया है परम सता का अंश है। अत निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि संसार की सभी जड़-चेतन वस्तुओं में चेतना व्याप्त है।

संदर्भ सूची:-

1. Dictionary English and Sanskrit - SIR Monier Williams
2. राम प्रसाद त्रिपाठी हिंदी विश्व कोश पृष्ठ-282
3. मानविकी पारिभाषिक कोश दर्शन खंड पृष्ठ-50
4. A Study in Consciousness- ऐनीबेंसेंट
5. डॉ. राजकुमारी सैनी-पंत की सौंदर्य चेतना का विकास पृष्ठ-52
6. सं-डॉ. कृष्ण लाल - वैदिक सहिताओं में विविध विधाएं पृष्ठ-12
7. मांडूक्योपनिषेद - 1/2/8
8. ऋग्वेद (3/55/5)
9. ऐतरेय आरण्यक 2/1/6
10. प्रश्नोपनिषेद 2/7
11. कठोपनिषेद 1/2/15
12. श्रीमद् भगवद गीता 2/47
13. श्रीमद् भगवद गीता 4/9
14. महाभारत आदि पर्व 2/391
15. बौद्ध सिद्धों की साधना, कल्याण साधनांक पृष्ठ-632
16. Google: www.pranwanand.org
17. पंचास्तिकाय समयसार - 128
18. प्रशस्त पाद कृत पदार्थ धर्म संग्रह पृष्ठ-99
19. प्रोफेसर हरेंद्र प्रसाद सिन्हा पृष्ठ 198/199
20. प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज पृष्ठ-33
21. प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज पृष्ठ-36
22. योग दर्शन (साधना पाठ श्लोक संख्या-20)
23. प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज (पृष्ठ संख्या -69)
24. योग और मानसिक स्वास्थ्य पृष्ठ-22